*महंगाई के विरुद्ध संघर्ष : हमारे संस्थागत विकास का उपाय**

रघुराम जी. राजन

मैं टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च(टीआईएफआर) को स्थापना दिवस के अवसर पर भाषण देने के लिए मुझे आमंत्रित करने हेतु धन्यवाद देता हूं। मैंने टीआईएफआर को दूर से बड़े आदर के साथ देखा है। इस संबंध में थोड़ी सी सफाई देना ठीक रहेगा। एमआईटी में पहले वर्ष में मेरे रूम के साथी डॉ. रंगनाथन अय्यर थे, जहां तक मैं जानता हूं वे बहुत ही चतुर गणितज्ञ थे - वे मेरी कक्षाओं में की गई पढ़ाई का वास्तविक विश्लेषण करके उसे मुझे समझने में मदद किया करते थे। और वे ऐसा कोई मौका मुझे बताने में नहीं छोड़ते थे कि टीआईएफआर में हरेक कितना स्मार्टर है। शायद रंगनाथन बहुत ही विनम्र स्वभाव के थे। मैंने उसके आधे की उम्मीद की थी, किंतु आज यहां आने पर मुझे मालूम हुआ कि यहां तो हेरक व्यक्ति के पास विशाल सिर है जिसमें बहुत ज्यादा दिमाग़ भरा हुआ है। लेकिन यह राहत की बात है कि बाहर से देखने पर आप सभी सामान्य से दिखाई देते हैं। लेकिन मैं यह बात पूरी गंभीरता से कहना चाहता हूं कि टीआईएफआर की लागातार सफलता से हमें यह पता चलता है कि यदि भारत विश्व स्तर की संस्था स्थापित करना चाहता है तो कर सकता है। जहां इस संस्थान का यह सौभाग्य रहा है कि इसे डॉ. होमी भाभा जैसे दूरद्रष्टा संस्थापक निदेशक मिले थे वहीं इस संस्था का निर्माण आप जैसे समर्पित अनुसंधानकर्ताओं के सामूहिक प्रयास से हुआ है। ऐसा बढ़िया कार्य करने के लिए आपको बधाई।

आज मैं अपने भाषण में,मैं एक अलग प्रकार की संस्था के निर्माण के प्रयासों के बारे में बताउंगा जो न तो बाह्य अंतरिक्ष में स्थापित है और न ही परमाणु के सूक्ष्मतम घटक में, लेकिन वह एक ऐसी संस्था है जो ऐसी चीजों को नियंत्रित करती है जिससे आपका दैनिक जीवन प्रभावित होता है; जिसे महंगाई(मुद्रास्फीति) कहते हैं। आपने जिस संस्था का निर्माण किया है और हम जिस संस्था की स्थापना महंगाई के नियंत्रण के लिए कर रहे हैं दोनों के बीच एक समानांतर रेखा है, हालांकि यह स्पष्ट है कि हमारे प्रयास ब्रह्मांड की संरचना की छानबीन करने में कम और मानवीय व्यवहार को प्रभावित करने वाले कारकों के प्रति अधिक है। अंततः दोनों के लिए मूल रूप से मानसिकता में परिवर्तन की आवश्यकता है।

महंगाई की लागत

भारत में पिछले चार दशकों से बहुत ज्यादा महंगाई रही है। हाल के दिनों में हमने यह अनुभव किया है कि 2006 से 2013 के बीच महंगाई की दर औसतन 9 प्रतिशत से अधिक रही है।

बहुत ज्यादा महंगाई की क्या कीमत चुकानी पड़ती है? स्पष्ट है कि अत्यधिक महंगाई की लागत के बारे में सभी समझते हैं, क्योंकि तब कीमतें हर मिनट बढ़ रही होती हैं। उस समय पैसा गर्म आलू की तरह हो जाता है जिसे लोग ज्यादा देर तक हाथ में नहीं रख सकते, और लोग बैंक से सीधे दुकानों की तरफ भागते हैं ताकि इससे पहले कि पैसे का मूल्य कम हो जाए वे चीजें खरीद लेना चाहते हैं। जब लोगों का विश्वास पैसे में समाप्त हो जाता है तब सामान के बदले सामान या सेवा के बदले सेवा अर्थात् बार्टर का मानदंड रह जाता है, जिससे लेनदेन काफी मुश्किल हो जाता है; किसी टैक्सी ड्राइवर को बांद्रा तक का टैक्सी का किराया अदा करने केलिए आप भौतिक शास्त्र का कितना लेक्चर देंगे; और फिर क्या टैक्सी ड्राइवर भौतिकशास्त्र के लेक्चर को भुगतान के रूप में स्वीकार करेगा; शायद आपको किसी विद्यार्थी को लेक्चर देना पड़े और उस विद्यार्थी को ड्राइवर को गाना सुनाना पड़े.....शायद आप समझ गए होंगे, अत्यधिक महंगाई पैसे के मूल्य को समाप्त कर देती है और लेनदेन करना मुश्किल हा जाता है।

अत्यधिक महंगाई का पुनः वितरणकारी प्रभाव पड़ता है, यह मध्यवर्ग की बांडों एवं बचत में रखी गई रकम को तबाह कर देती है। 1920 के दशक में आस्ट्रिया और जर्मनी की अत्यधिक महंगाई की विभीषिका की कहानी आज भी पढ़ते हुए भयावह लगती है।

इसलिए यह स्पष्ट हो गया है कि किसी को भी अत्यधिक महंगाई नहीं चाहिए। लेकिन तब क्या होगा यदि महंगाई 15 प्रतिशत प्रति वर्ष हो? क्या देशों ने बहुत अधिक महंगाई होने

* डॉ. रघुराम जी. राजन, गवर्नर, भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा टाटा इंस्टीट्यूट आफ फंडामेंटल रिसर्च के स्थापना दिवस के अवसर पर 20 जून, 2016 को दिया गया भाषण

के बावजूद उस समय में तेजी से विकास नहीं किया था? इसका उत्तर है कि बिलकुल किया था, लेकिन शायद वे कम महंगाई के साथ अधिक तेज़ी से विकास कर सकते थे।[1] अंततः, महंगाई में अस्थिरता उसके स्तर के साथ-साथ बढ़ती है जिस प्रकार से अर्थव्यवस्था में कीमतों में उसके बुनियादी मूल्य में बिखराव आ जाता है। इससे मूल्य के संकेत भ्रामक हो जाते हैं - इसीलिए मेरी मशीन का मूल्य बढ़ जाता है क्योंकि उसकी मांग अधिक है या फिर महंगाई सामान्य रूप से मौजूद है? पहले वाले मामले में, मैं अधिक बिक्री कर सकता हूं यदि मैं अधिक उत्पादन करूं, और बाद वाले मामले में मेरे पास ऐसी इन्वेंट्री होगी जो बिकी ही नहीं। अतः, उत्पादन और निवेश अधिक जोखिमपूर्ण बन जाएंगे। इतना ही नहीं, उच्च और अस्थिर महंगाई के कारण उधारदाता ज्यादा ब्याज दर की मांग करता है ताकि महंगाई जितनी बढ़ी है उसकी क्षतिपूर्ति हो सके(इसे महंगाई प्रीमियम के नाम से जाना जाता है), जिससे वित्त देने की लागत बढ़ जाती है। दीर्घकाल के लिए सांकेतिक(और वास्तविक) ब्याज दर की बचत करने वाले चाहेंगे कि दर बढ़े, इस प्रकार दीर्घ अवधि वाली परियोजनाओं को रोककर महंगी बना देते हैं।

ये सब प्रभाव तब भीतर प्रवेश कर जाते हैं जब महंगाई वास्तव में बहुत ज्यादा हो। इसलिए यह पूछना जायज़ होगा कि 'जिस निर्धारित स्तर पर महंगाई विकास की प्रक्रिया को नुकसान पहुंचाने लगती है?' दुर्भाग्य से इस प्रश्न का उत्तर देना बहुत मुश्किल है - विकासशील देशों में आमतौर पर महंगाई अधिक होती है, और विकासशील देशों में विकास की दर भी ऊंची होती है। इसलिए कोई भी महंगाई और विकास के दरम्यान सकारात्मक संबंध देख सकता है, हालांकि इसका मतलब यह नहीं है कि अधिक महंगाई से विकास अधिक होगा। यही कारण है कि ऐसे निर्धारित प्रभाव जिसके आगे मुद्रास्फीति विकास को प्रभावित करने लगती है, का अनुमान लगाने से संबंधित साहित्य काफी बृहत् एवं अधूरे हैं। अधिकांश अध्ययन यह मानते हैं कि दो अंकों की मुद्रास्फीति विकास के लिए नुकसानदेह है लेकिन इस बात के बारे में भी अस्पष्ट हैं एक अंक में भी निर्धारित स्थिति कहां पर टिकती है।[2]

मुद्रास्फीत का लक्ष्य

जो भी हो, सीमित साक्ष्य के मद्देनज़र, ऐसा क्यों है कि अधिकांश देश अपनी महंगाई के लक्ष्य को एक अंक में न्यून रखते हैं - 2 से 5 प्रतिशत बजाय 7 से 10 प्रतिशत रखने के? इसके मेरे दिमाग में इसके तीन कारण हैं: पहला, यदि महंगाई कम स्तर पर हो तो भी वह समग्र विकास को प्रभावित नहीं करती है, क्योंकि महंगाई के परिणाम समान रूप से वितरित नहीं होते हैं। जबकि ज्यादा महंगाई अमीर लोगों की, अधिक कर्जदार की, उद्योगपतियों की सहायता कर सकती है क्योंकि उनका कर्ज उनके बिक्री राजस्व की तुलना में कम होता जाता है।, यह गरीब लोगों को चुभता है जो रोज मजदूरी पर काम करते हैं, जिनकी मजदूरी महंगाई के सूचकांक में शामिल नहीं है।[3]दूसरा, अधिक महंगाई ज्यादा अस्थिर होती है। इससे यह मौका बढ़ जाता है कि यदि अधिक स्तर पर लक्ष्य निर्धारित किया गया है तो वह उस रेंज में कहीं भी परिवर्तित हो सकती है। यदि उच्चतर लक्ष्य निर्धारित लक्ष्य के निकट है तो इस बात की संभावना अधिक हो सकती है कि देश निर्धारित लक्ष्य से आगे तो निकल सकता है लेकिन उसमें विकास की दर कम होगी। तीसरा, मुद्रास्फीति स्वयं को उच्च स्तर पर रख सकती है - जितना अधिक लक्ष्य होगा उतनी ही संभावना होगी कि ऐसे क्षेत्र में प्रवेश कर जाएं जहां मुद्रास्फीति का चक्र ऊर्ध्वमुखी होगा।

अतः आज मौद्रिक अर्थशास्त्र की मान्य प्रज्ञा यह है कि केंद्रीय बैंक अर्थव्यवस्था की सेवा करता है तथा विकास के लिए मुद्रास्फीति को न्यून एवं वहनीय बनाए रखता है और उस स्तर तक बनाए रखता है जो सरकार द्वारा दिए गए लक्ष्य के आसपास हो। यह अर्थशास्त्र में प्रचलित पूर्व विचार के विरुद्ध है कि ड्रामाई अंदाज़ में ब्याज दरों की कटौती करते हुए अधिक से अधिक मांग बढ़ा दी जाए, तो केंद्रीय बैंक वहनीय विकास की स्थिति पैदा कर

[1] वस्तुतः एक सेमिनार पेपर में फिशर(1993) सीमापार देश का साक्ष्य प्रस्तुत करते हुए यह दिखाते हैं कि विकास का संबंध महंगाई के साथ उल्टा है, इसके कारण-प्रभाव महंगाई से विकास की ओर बढ़ते हैं।

[2] उदाहरण के लिए, ब्रूनो एंड ईस्टर्ली(1995) का कहना है कि 40 प्रतिशत खतरे की बात है, उसके आगे मुद्रास्फीति के बढ़ने से विकास का संकट पैदा कर सकता है। इसके विपरीत खान और सेनहदजी(2000) का अनुमान है कि निर्धारित सीमा से ऊपर यदि मुद्रास्फीति होती है तो वह विकास की दर औद्योगिक राष्ट्रों में 1-3 प्रतिशत धीमा बनाती है और विकासशील देशों को 7-11 प्रतिशत धीमा कर देती है।

[3] ईस्टर्ली और फिशर के अनुसार(2001), 'संतुलन के संबंध में अधिकांश साहित्य - पूरी तरह से नहीं- इस विचार का समर्थन करते हैं कि मुद्रास्फीति एक क्रूर प्रकार का कर है।'

लेगा, अलबत्ता थोड़ी सी मुद्रास्फीति के साथ। यह विचार केंद्रीय बैंक की शक्तियों के बारे में निराशा में आशावान होने जैसा है।

वस्तुतः यह मुद्रास्फीति और विकास के बीच एक अल्पकालिक तालमेल है। साधारण व्यक्ति के हिसाब से यदि केंद्रीय बैंक ब्याज दर में आज 100 आधार अंक की कटौती करता है और बैंक उस कटौती के प्रभाव को आगे बढ़ाते हैं तो मांग में तेजी आएगी और हमें कुछ समय के लिए ऊंची विकास दर मिलेगी विशेष रूप से यदि आर्थिक खिलाड़ियों के लिए यह आश्चर्यजनक स्थिति हो। स्टाक बाज़ार कुछ दिनों के लिए ऊपर चढ़ जाएगा। लेकिन आप सभी लोगों को कभी-कभार ही बेवकूफ बना सकते हैं। यदि अर्थव्यवस्था अपनी पूरी क्षमता से उत्पादन कर रही है तब हमें तुरंत चीजों की कमी होने लगेगी और कीमतें तेजी से बढ़ जाएंगी। लोग यह भी उम्मीद करने लगेंगे कि केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति पर ध्यान न दे (अर्थात बस आप नाउम्मीद होकर शांत देखते रहें जैसाकि एक पक्षी कठिनाइयों के समय में शांत होकर स्वयं को परिस्थितियों पर छोड़ देता है) और अपने निर्णयों में महंगाई की उच्च प्रत्याशाओं को शामिल करे, साथ ही उच्च वेतन की मांग करे। यदि इसके विपरीत, केंद्रीय बैंक मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के प्रति कटिबद्ध है तो वह ब्याज दर को काफी बढ़ाने केलिए बाध्य हो जाएंगे ताकि अस्थायी विकास को समायोजित कर सकें। तेजी और तबाही अर्थव्यवस्था के लिए ठीक नहीं होगी और यदि कटौती नहीं की जाती है तो औसत वृद्धि दर उससे भी नीचे रहेगी। यही कारण है कि आधुनिक अर्थशास्त्री यह भी कहते हैं कि विकास और मुद्रास्फीति के बीच दीर्घकालिक तालमेल नहीं होता है - केंद्रीय बैंक के लिए विकास को बनाए रखने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि मांग की स्थिति को आपूर्ति के आसपास बनाए रखे ताकि महंगाई हलकी बनी रहे, और अन्य कारक जो विकास को आगे बढ़ाते हैं जैसे उत्तम गवर्नेंस को केंद्रबिंदु बना सकते हैं।[4]

अलग प्रकार से कहें तो जब लोग कहते हैं कि ''मुद्रास्फीति कम बनी हुई है अब आप वृद्धि हासिल कर सकते हैं'', तो वे वाक़ई यह नहीं समझते कि यह दोनों बातें एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक हमेशा कम से कम नीतिगत दरें रखता है, जो उसके मुद्रास्फीति के उद्देश्यों के अनुरूप हो और उसे पूरा कर सके। वस्तुतः आज मुद्रास्फीति हमारे द्वारा निर्धारित ऊपरी लक्ष्य-स्तर के निकट है जिसका अर्थ यह है कि हम बहुत ज्यादा आक्रामक नहीं रहे हैं, और पूर्व में बहुत अधिक कटौती करने की सलाह न मानकर हमने अक्लमंदी का काम किया था। यदि कोई आलोचक यह मानता है कि ब्याज दरें ज़रूरत से ज्यादा ऊंची हैं तो या तो उसे यह दलील देनी पड़ेगी कि सरकार-निर्धारित मुद्रास्फीति लक्ष्य उस स्तर से अधिक होना चाहिए जिस स्तर पर आज मुद्रास्पीति है, या फिर यह तर्क देना चाहिए कि भारतीय रिज़र्व बैंक भावी मुद्रास्फीति के बारे में अत्यधिक आशावादी है। वह दोनों बातें नहीं कह सकता है, कि उसे मुद्रास्फीति भी कम चाहिए और नीतिगत दरें भी कम चाहिए।

वहीं पर, भारतीय रिज़र्व बैंक ऐसी मुद्रास्फीति पर फोकस नहीं करता है जो विकास को अलग रखे। उदाहरण के लिए यदि मुद्रास्फीति तेल की कीमतों में तीव्र वृद्धि के कारण तेजी से बढ़ती है तो केंद्रीय बैंक के लिए यह समझदारी की बात नहीं होगी कि वह तुरंत ब्याज दर इतना अधिक बढ़ाते हुए मुद्रास्फीति को लक्ष्य के दायरे में ले आए कि समस्त आर्थिक गतिविधियों का दम निकल जाए। बल्कि समझदारी यह होगी कि वह मुद्रास्फीति को मध्यावधि में नियंत्रण में लाए अर्थात् अगले दो या कुछ वर्षों में, दरों को धीरे-धीरे बढ़ाते हुए उस बिंदु तक लाए जिसे बैंक पर्याप्त समझते हों कि उससे मुद्रास्फीति पुनः लक्ष्य के दायरे में आ जाएगी। मैं यह बात ज़ोर देकर कहना चाहता हूं कि यह न तो तेल की कीमतों की दिशा के बारे में भविष्य कथन है न ही हमारी मौद्रिक नीति के बारे में, बल्कि मुझे कल अखबार में यह पढ़ने दीजिए कि 'भारतीय रिज़र्व बैंक को दरें बढ़ाना चाहिए।' सामान्यतया, विस्तारित ग्लाइड-पथ जिसपर हम मुद्रास्फीति को लाना चाहते हैं, वह इस बात की जांच उपयुक्त रूप से करेगा और मुद्रास्फीति एवं यथोचित विकास की आवश्यकता के बीच संतुलन बनाए रखेगा।

हम जो कर रहे हैं उसके विपक्ष में तर्क

अनेक लोग यह समझते हैं कि हम अपनी कार्रवाई में पूरी तरह से भटक गए हैं। मैं चार आलोचनाओं के बारे में बताना

[4] मैंने यहां थोड़ा खुलकर बात की है। अल्पकालिक तालमेल कार्य करता है क्योंकि आर्थिक ऐक्टर्स अचानक खो दिए जाने से आश्चर्य की स्थिति में आ सकते हैं, और यह अचानक स्थिति सकारात्मक वृद्धि का प्रभाव ला सकती है। दीर्घकाल में, केंद्रीय बैंक अचंभित करने वाली अपनी शक्ति खो देता है, और पब्लिक अपनी सही-सही भविष्यवाणी उसमें शामिल करती है कि केंद्रीय बैंक समस्त सामान्य चरों जैसे ब्याज दरों के बीच कितनी मुद्रास्फीति पैदा कर सकता है। जिस सीमा तक ज्यादा महंगाई विकास एवं कल्याण के लिए नुकसानदेह है उस सीमा तक केंद्रीय बैंक अल्पकालिक आश्चर्य देने का प्रयास करता है जो दीर्घकालिक महंगाई की मोर्चाबंदी करती है जो विकास के लिए ठीक नहीं होती है।

चाहूंगा। पहली आलोचना यह है कि हम मुद्रास्फीति के गलत इंडेक्स का इस्तेमाल कर रहे हैं। दूसरी आलोचना यह है कि हमने ब्याज दरों को बहुत ऊंचा रखते हुए निजी निवेश को खत्म कर दिया है। यह आलोचना कुछ विरोधाभासी है। हम दरों में तेजी से कटौती करके पेंशनभोगियों को भी नुकसान पहुंचा रहे हैं। तीसरी आलोचना यह है कि जब अर्थव्यवस्था में आपूर्ति की कमी रहती है तब मौद्रिक नीति का मुद्रास्फीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।, इसलिए हमें उसे नियंत्रित करने का अपना प्रयास त्याग देना चाहिए। चौथी आलोचना, जब सरकार का खर्च हावी (अनर्गल भाषा में 'राजकोषीय वर्चस्व') हो जाता है तब केंद्रीय बैंक का मुद्रास्फीति पर नियंत्रण बहुत कम रह जाता है।

गलत सूचकांक

ऐतिहासिक रूप से, भारतीय रिज़र्व बैंक अनेक प्रकार के संकेतकों को लक्ष्य करता है, थोक मूल्य सूचकांक को बहुत महत्व देता है (डब्लूपीआई)। सैद्धांतिक रूप से थोक मूल्य सूचकांक पर भरोसा करने में दो समस्याएं हैं। पहली यह कि आम नागरिक जो महसूस करता है वह खुदरा महंगाई है, अर्थात् उपभोक्ता मूल्य सूचकांक(सीपीआई)। चूंकि मौद्रिक नीति जनसामान्य की महंगाई संबंधी उम्मीदों को नियंत्रित करते हुए 'कार्य' करती है और इस प्रकार वेतन की मांग को भी, यही वजह है कि उपभोक्ता मूल्य संबंधी महंगाई मायने रखती है। दूसरी यह कि थोक मूल्य सूचकांक में बहुत से व्यापारित माल एवं वस्तुओं का बास्केट होता है जिनके मूल्य अंतरराष्ट्रीय स्तर पर निर्धारित होते हैं। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कम मुद्रास्फीति के फलस्वरूप थोक मूल्य सूचकांक न्यून हो सकता है, जबकि घरेलू मुद्रास्फीति के घटक जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाएं तथा खुदरा मार्जिन एवं गैर-व्यापारित खाद्यपदार्थ की बढ़ी हुई कीमतें बड़े आराम से सीपीआई को बढ़ा सकती हैं। थोक मूल्य सूचकांक पर फोकस करने से हम यह मान तो सकते हैं कि हम मुद्रास्फीति को नियंत्रित कर रहे हैं, लेकिन यह अन्य स्थान के केंद्रीय बैंकों द्वारा की गई कार्रवाई से उत्पन्न स्थिति हो सकती है। ऐसा करने से हम सीपीआई को नज़रअंदाज़ कर देंगे जो हमारे आम नागरिकों के लिए मायने रखता है, और इसका घरेलू मौद्रिक नीति पर अधिक प्रभाव पड़ता है।

प्रभावी वास्तविक ब्याज दर, निवेश और बचत

बेशक, आलोचक थोक मूल्य सूचकांक पर एक कारण से फोकस करने का तर्क अवश्य दे सकते हैं कि इस समय डब्लूपीआई कम है, और इसका मतलब यह हुआ कि नीतिगत दरें कम रहेंगी। यह एक अदूरदर्शिता होगी क्योंकि जब वस्तुओं की कीमतें बढ़ेंगी और विश्व में मुद्रास्फीति बढ़ेगी, तब डब्लूपीआई, सीपीआई से आगे निकल जाएगी। यहां एक अन्य सूक्ष्म दलील और भी है; वास्तविक ब्याज दर वह दर है जो उधारकर्ता द्वारा अदा की जाने वाली ब्याज दर एवं मुद्रास्फीति के बीच का अंतर होती है - यह उधार लेने की सही लागत होती है जिसे सामान जैसे मशीन या डोसा खरीदने पर अदा करनी पड़ती है। यदि नीतिगत ब्याज दरों को सीपीआई को नियंत्रित करने के लिए सेट कर दिया जाए तो वे विनिर्माताओं के लिए बहुत अधिक होंगी जो केवल इस बात को देखते हैं कि उनके उत्पादों के मूल्य केवल डब्लूपीआई की दर पर बढ़ते हैं। मेरी सहानुभूति इस दलील के लिए हो सकती है किंतु मेरा मानना है कि यह चिंता कुछ अधिक ही है। यदि विनिर्माताओं के पास अंतरराष्ट्रीय स्पर्धा के कारण मूल्य-निर्धारण की शक्ति नहीं है तो क्या हुआ, उनके सामग्री-सप्लायर्स के पास तो उससे भी कम है। इसलिए एक धातु निर्माता को लाभ कोयले और कच्चे लोहे की कम होती कीमतों से होता है, भले ही उन्हें उतना अधिक लाभ न मिले जितना कि पूर्व में धातु की बिक्री से मिला करता था। उनके लिए मुद्रास्फीति का सही मापक उनके लाभ में निहित मुद्रास्फीति है, जो डब्लूपीआई द्वारा बताई गई मुद्रास्फीति से कहीं अधिक हो सकती है।

एक अन्य गलती जो की जाती है वह यह है कि उधारकर्ता द्वारा अदा की जाने वाली ब्याज दर के समस्त गुणों को मौद्रिक नीति के मत्थे मढ़ देना। लेकिन, जो उधारकर्ता बहुत अधिक कर्जदार हैं, वे ब्याज दर का बड़ा हिस्सा जो अदा करते हैं उसमें बैंक द्वारा जोखिम के लिए लिया गया क्रेडिट जोखिम प्रीमियम हो सकता है जो उन्हें वापस नहीं मिल सकता है। यह ऋण जोखिम प्रीमियम काफी हद तक भारतीय रिज़र्व बैंक की नीतिगत दर से स्वतंत्र स्वरूप का होता है।

इसलिए जब कोई हमें इसलिए धमकाता है कि कोई उद्योगपति बहुत कर्जदार है जिसने 14 प्रतिशत ब्याज पर ऋण लिया है और थोक मूल्य सूचकांक 0.5 प्रतिशत है, तब वे यह कहने में दो महत्वपूर्ण गलतियां करते हैं कि वास्तविक ब्याज दर 13.5 प्रतिशत है, पहली यह कि 7.5 प्रतिशत क्रेडिट स्प्रेड है, और यदि हम नीति दर(जो आज 6.5 प्रतिशत पर है) में 100 आधार अंकों की और कटौती करते हैं तो भी वह कुछ ज्यादा नहीं घटेगी। दूसरी,

महंगाई जो उद्योगपति को परेशान करती है वह 0.5 प्रतिशत नहीं है जिसपर उनके उत्पादन मूल्य बढ़ते हैं, बल्कि 4 प्रतिशत है जिसपर उनके लाभ बढ़ते हैं (क्योंकि लागतें 5 प्रतिशत वार्षिक दर से गिर रही हैं)। वास्तव में जोखिम मुक्त ब्याज दर जो वे अनुभव कर रहे हैं वह 2.5 प्रतिशत है, जो विश्व के किसी अन्य स्थान की दर से थोड़ा सा ज्यादा है, लेकिन यह निवेश के रास्ते में अड़चन का कोई बहुत बड़ा कारक नहीं है। उधार दर को कम करने के लिए अधिक उपयोगी यह होगा कि उधार देने वाली संस्थाएं बढ़ाई जाएं और उधारकर्ताओं के व्यवहार में बदलाव लाया जाए ताकि ऋण जोखिम प्रीमियम कम किया जा सके, बजाय इस बात के प्रयास करने के कि भारतीय रिज़र्व बैंक पर दबाव डाला जाए कि वह नामुनासिब तरीके से दरों को कम करे।

इस समय जो नीतिगत दर है वह संतुलनकारी भूमिका अदा कर रही है। यह उसी प्रकार महत्वपूर्ण है जिस प्रकार से विनिर्माता के लिए वास्तविक उधार दर होती है और बचतकर्ता के लिए वास्तविक जमा दर होती है। पिछले दशक में, बचतकर्ताओं को विस्तारित अवधि में नकारात्मक वास्तविक दर का अनुभव हुआ था क्योंकि सीपीआई, जमा ब्याज दरों से अधिक हो गई थी। इसका मतलब यह हुआ कि उन्हें जो ब्याज मिलता है उससे कहीं अधिक रकम महंगाई के कारण मूल क्रय-शक्ति में से घट जाती है। बचतकर्ताओं को इसका अंदाज़ा लग जाता है, और वे अपनी बचत को वास्तविक आश्रित जैसे स्वर्ण एवं भू-संपदा में लगाने लगते हैं तथा वित्तीय आस्ति जैसे जमाराशि के रूप में रखने से बाज़ आते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि भारत को निवेश के लिए धन जुटाने हेतु बाहर से उधार लेने की ज़रूरत है, जिससे चालू खाता घाटा बढ़ने लगेगा और उसे वहनीय नही रखा जा सकेगा।

हाल के वर्षों में, महंगाई के विरुद्ध हमारी लड़ाई का यह भी अर्थ है कि नीतिगत दरें तभी नीचे लाई गई हैं जब हमने यह सोचा कि जमाकर्ता यह उम्मीद कर रहे हैं कि उनकी वित्तीय बचतों पर यथोचित रूप से वास्तव में धनात्मक प्रतिफल मिलना चाहिए। इससे गृहस्थों की वास्तविक आस्तियों में बचत करने के बजाय वित्तीय बचत में वृद्धि हुई है जिससे चालू खाता घाटे में कमी लाने में मदद मिली है। वहीं पर हमें पेंशनभोगियों से दिल दुखाने वाले पत्र प्राप्त हुए हैं जिनमें डिपाजिट दर में कटौती किए जाने की शिकायत की गई है। सच्चाई यह है कि वे पहले से अब ज्यादा अच्छी स्थिति में हैं, जैसाकि मैंने भाषण में पूर्व में समझाने की कोशिश की है, लेकिन मैं समझ सकता हूं कि वे दुखी इसलिए हैं कि उनकी ब्याज वाली आय घट रही है।

आधारभूत बात यह है कि मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने में मौद्रिक नीति निर्माता कारोबारी चक्र के दौरान निवेशक और बचतकर्ता दोनों के हितों को कारगर रूप से संतुलित करते हैं। मैं एक स्थान पर भाषण दे रहा था, वहां पर एक उद्योगपति ने अपने उधार पर 4 प्रतिशत के बारे में शोर मचाना शुरू कर दिया। जब मैंने उनसे पूछा कि, यदि इस बात को छोड़ दें कि क्या वे अपने जोखिमपूर्ण मित्र के पास ही निवेश करना चाहेंगे, क्या वे एक सुरक्षित बैंक में उस दर पर धन जमा करना चाहेंगे, तो उन्होंने जवाब दिया कि 'नहीं' ! जो भी हो, उनका आग्रह हमारे द्वारा बहुत अधिक दर कटौती के बारे में था। दुर्भाग्य से नीति-निर्माताओं को भिन्नता बनाए रखने में आनंद नहीं आता है।

आपूर्ति की बाधाएं

खाद्यपदार्थों की महंगाई ने सीपीआई मुद्रास्फीति में काफी योगदान दिया है, लेकिन इसी प्रकार से मुद्रास्फीति ने सेवाओं जैसे शिक्षा और स्वास्थ्य को भी प्रभावित किया है। कुछ लोग तर्क देते हैं कि भारतीय रिज़र्व बैंक के लिए यह मुश्किल है कि वह मौद्रिक नीति के माध्यम से खाद्यान्न की मांग को नियंत्रण कर सके। फिर वे यह कहते हुए आगे बढ़ जाते हैं, भले ही गलत कह रहे हों, कि हमें सीपीआई मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के बारे में चिंता नहीं करनी चाहिए। सच्चाई यह है कि जहां हमारे लिए खाद्यान्न की मांग को नियंत्रित करना कठिन है, खासतौर से आवश्यक खाद्यपदार्थ, और केवल सरकार ही प्रभावी खाद्यान्न प्रबंधन के माध्यम से ही खाद्यपदार्थों की आपूर्ति को प्रभावित कर सकती है, वहीं हम अन्य चीजों की मांग को नियंत्रित कर सकते हैं, ज्यादा विवेकपूर्ण तरीके से, उन चीजों के बारे में जो बास्केट में हैं और कठोर मौद्रिक नीति के माध्यम से। खाद्यपदार्थों की निरंतर बढ़ती हुई महंगाई को रोकने के लिए कि कहीं वह बढ़ते हुए वेतन के माध्यम से आम महंगाई में न बदल जाए, हमें अन्य चीजों की महंगाई को कम करना होता है। वास्तव में समस्त हेडलाइन मुद्रास्फीति हाल के समय में 6 प्रतिशत से नीचे रह सकती थी भले ही खाद्यान्न की महंगाई बढ़ी हुई हो, जिसका स्पष्ट कारण है कि सीपीआई बास्केट के अन्य घटक जैसे 'कपड़े और जूते-चप्पल' के दाम कम तेजी से बढ़ रहे हैं।

राजकोषीय वर्चस्व

अंतिम बात यह है कि, एक वजह यह थी कि भारतीय रिज़र्व बैंक ने ऐतिहासिक रूप से स्वयं को मुद्रास्फीति पर फोकस करते हुए एक फ्रेम के भीतर कैद कर रखा था क्योंकि इसे डर था कि कहीं सरकारी खर्चकी अधिकता इसके कार्य को असंभव न बना दे। लेकिन, राजकोषीय वर्चस्व का आशय केवल इतना ही है कि सरकार द्वारा निर्धारित मुद्रास्फीती के उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक दोनों को भूमिका अदा करनी है। यदि सरकार अधिक खर्चा करती है तो केंद्रीय बैंक को उसकी भरपाई कठोर मौद्रिक नीति से करनी होगी ताकि मुद्रास्फीति के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सके। जब तक दोनों में यह समझ समान रूप से मौजूद है तब तक मुद्रास्फीती-फोकस प्रेमवर्क का अर्थ यह रहेगा कि सरकार और केंद्रीय बैंक के बीच बेहतर समन्वय स्थापित रहेगा क्योंकि दोनों संयुक्त ध्येय अर्थात् मैक्रो-स्थिरता बनाए रखने का प्रयास करेंगे। मेरा पक्का विश्वास है कि हाल के जिम्मेदार बजट में इतनी गुंजाइश अवश्य है कि भारतीय रिज़र्व बैंक अप्रैल में सहजता महसूस कर सके।

व्यावहारिक रूप से मुद्रास्फीति को फोकस करना

मैंने जो कुछ कहा है उससे आप यह अंदाज़ा लगाएंगे कि मुद्रास्फीति फोकस फ्रेमवर्क के भीतर मौद्रिक नीति ज्यों ही मुद्रास्फीति को नियंत्रण के अधीन लाना चाहती है तो वह विभिन्न प्रकार के हितों को संतुलित करने का प्रयास करती है। ऐसा करते समय हमें सिद्धांतगत रूप से नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप से सोचना होता है। उदाहरण के लिए, उभरते बाज़ारों में पूंजी का आना बहुत अधिक हो सकता है जिसकी वजह से विनिमय दर एवं वित्तीय स्थिरता प्रभावित हो सकती है। एक सिद्धांतवादी दृष्टिकोण अपना हाथ खींच लेगी जबकि एक व्यावहारिक दृष्टिकोण की मानसिकता इसमें उतार-चढ़ाव एवं अस्थिरता को कम करने के लिए हस्तक्षेप करेगी। जो भी हो, व्यावहारिक दृष्टिकोण वाला दिमाग यह भी सोचेगा कि विनिमय दर स्थिरता हासिल करने केलिए सबसे अच्छा तरीका यह है कि मुद्रास्फीति की दर को उस स्तर तक लाया जाए जो विश्व की मुद्रास्फीति दर के अनुरूप हो।

इसी प्रकार, जहां वित्तीय स्थिरता की चिंता करना पूरी तरह भारतीय रिज़र्व बैंक का ही उद्देश्य नहीं है, इसलिए वे अपना रास्ता स्वयं बना लेते हैं क्योंकि भारतीय रिज़र्व बैंक को मुद्रास्फीति को नियंत्रित करते समय संवृद्धि को ध्यान में रखना पड़ता है। अतः यदि भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति ऋण अथवा आस्ति मूल्य संबंधी बुलबुला पैदा करने में सहायक हो रही है तो इससे प्रणालीगत संकट पैदा हो सकता है और विकास की दर ध्वस्त हो सकती है, इसलिए भारतीय रिज़र्व बैंक को यदि मैक्रो-विवेकपूर्ण नीतियों का विकल्प असरदार साबित नहीं होता है तब सुधारात्मक मौद्रिक नीति का सहारा लेना ही पड़ता है।

कम मुद्रास्फीति की ओर गमन

किसी भी अर्थव्यवस्था के लिए उच्च मुद्रस्फीति की अवस्था से कम मुद्रस्फीति की अवस्था की ओर जाना आसान कार्य नहीं होता है। अनेक वर्षों तक ऊंची मुद्रास्फीति की स्थिति में रहने के बाद जनसाधारण की उम्मीद उससे नीचे जाकर समायोजन करने की बहुत धीमी होती है। फलस्वरूप वे अपने ब्याज को कम दर पर नीचे लेजाने के लिए कम तैयार होते हैं। समग्र गृहस्थ बचत के हिस्से के रूप में गृहस्थ वित्तीय बचत तेजी से बढ़ रही है लेकिन जीडीपी के बड़े हिस्से के रूप में नहीं बढ़ रही है।[5] ब्याज दर का निर्धारण करने वाले बाज़ार में भी थोड़ा-बहुत बदलाव करने से भी बात नहीं बनेगी। जबकि नीतिगत दरें कम हैं, सरकार द्वारा लघु बचत पर जो दर अदा की जारही है वह बैंक जमा दर से कहीं अधिक है, जैसे कि करमुक्त बांड पर प्रभावी दरें। मुझे खुशी है कि सरकार ने लघु बचत की दरों को सरकारी बांड दर से जोड़ देने का निर्णय लिया है, लेकिन इन दरों की निरंतर जांच करते रहना होगा ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि यह ऐसी ऊंची आधार दर न बन जाए जिसके नीचे बैंक जमा दर की कटौती न कर सकें। कुल मिलाकर बैंक की उधार दरें नीचे जा रही हैं, लेकिन नीतिगत दरों में कटौती के अनुरूप नहीं हो रही हैं।

ऐसे समय पर गलत चीज जो की जा सकती है वह है कार्यप्रणाली में परिवर्तन करना। ज्यों ही आर्थिक नीति तकलीफ देने लगती है, चालाक अर्थशास्त्री हमेशा नए गैरपरंपरागत मार्ग सुझाते हैं। यह समस्या किसी उभरते बाज़ार विशेष के लिए ही

[5] गृहस्थों से संबंधित डाटा से पता चलता है कि गृहस्थों की वित्तीय बचत भी बढ़ रही हैं। उदाहरण के लिए, भारत में चुनिंदा राज्यों के लिए हाल में किए गए दो वित्तीय समावेशन सर्वेक्षण - इंटरमीडिया द्वारा किया गया वित्तीय समावेशन इनसाइट सर्वेक्षण तथा फिनस्कोप सर्वेक्षण को भारतीय लघु उद्योग विकास बैंक(सिडबी) द्वारा कार्यान्वित किया गया है - उससे पता चलता है कि ऐसे व्यक्ति 'जिनके पास बैंक खाता' है, उनमें से जिन लोगों ने बैंक डिपाजिट के माध्यम से पैसा जमा किया है उसका हिस्सा 2013 के 60 प्रतिशत से बढ़कर 2015 में 98 प्रतिशत हो गया है।और जो लोग पैसे की 'बचत कर रहे हैं', बैंक के माध्यम से ऐसी बचत का हिस्सा 2013 के 67 प्रतिशत से बढ़कर 2015 में 93 प्रतिशत हो गया है। उन लोगों में से जो पैसे की बचत कर रहे हैं, उनमें से 'घर पर बचत' का हिस्सा 2014 के 90 प्रतिशत से घटकर 2015 में 6 प्रतिशत हो गया है।

नहीं है, किंतु तब अधिक मुश्किल बन जाती है जब सभी उभरते बाज़ार यह मानने लगते हैं कि उनका रास्ता सबसे विशिष्ट है, और यहां पर अर्थशास्त्र के नियम भिन्न प्रकार से कार्य करते हैं। भारत में, हमने इस मामले में दृढ़ता बरती है। महान कार्टूनिस्ट आर के लक्ष्मण की पुस्तक के पन्ने पलटते हुए मैंने पाया कि 1997 में जिस समय कार्टून प्रकाशित हुआ था, सभी प्रकार की परेशानियों के लिए समाधान दिया गया था, जैसाकि अब भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा सौ आधार अंक की ब्याज दर में कटौती करके की जा रही है। तर्क बदल जाते हैं किंतु दक्ष समाधान नहीं बदलते हैं।

मैक्रो-आर्थिक नीतियों के दशकों के अध्ययन से मुझे पता चलता है कि ऐसे अर्थशास्त्रियों से सावधान रहें जो यह कहें कि इसकी सहायता से आप सब कुछ कर सकते हैं बशर्तेकि आप अलग तरीके से इसका इस्तेमाल करें। अर्जेंटीना, ब्राज़ील और वेनजुएला ने गैरपरंपरागत नीतियों का इस्तेमाल करने का प्रयास किया जिसके परिणाम निराशाजनक रहे। मैक्रो-नीतियों के साथ छेड़छाड़ करने से मैक्रो-जोखिम पैदा होते हैं जिसका सामना हमारे असुरक्षित गरीब लोग नहीं कर सकते हैं, इसलिए बेहतर है कि माइक्रो इकानामिक पालिसी के संबंध में हम गैर-परंपरागत बने रहें जैसे वे नीतियां जो हमारे व्यवसाय और बैंकिंग वातावरण को परिभाषित करें। इससे न केवल गलती करने पर हमारा कम नुकसान होगा बल्कि नवोन्मेषी नीति पुरानी बाधाओं के प्रति नए मार्ग खोलेगी। खासतौर से, भारतीय रिज़र्व बैंक अपनी ओर से इस दिशा में बहुत उदार रवैया अपनाता रहा है जैसे बैंक लाइसेंस प्रदान करना, वित्तीय समावेशन और भुगतान प्रौद्योगिकी एवं ऐसी संस्थाओं के प्रति जो विकास को आगे बढ़ाने वाली होती हैं।

संस्था निर्माण

अब मैं संस्था निर्माण की बात करूंगा। हम कई दशकों से कम से बहुत अधिक महंगाई के दौर से गुज़र चुके हैं, जहां उद्योगपति और सरकारें ऋणात्मक वास्तविक ब्याज दरें अदा करती रही हैं और महंगाई का छुपा हुआ कर भार मध्यवर्गीय बचतकर्ताओं एवं गरीबों पर पड़ता है। आज जो कुछ घटित हो रहा है वह क्रांतिकारी है - हम बीते हुए दिनों के कई रास्ते त्याग रहे हैं जिसका फायदा कुछ लोगों को ही पहुंचा है लेकिन उसके लिए बहुत से लोगों को कीमत चुकानी पड़ी है। जैसे-जैसे हम और संस्थाओं को जोड़ते जाएंगे तो मुद्रास्फीति निरंतर कम होती जाएगी और वास्तविक ब्याज दरें सकारात्मक होंगी, इसके लिए सभी घटकों को समायोजन करने पड़ेंगे। उदाहरण के लिए, यदि उद्योगपति दरों को काफी कम चाहते हैं तो उन्हें ऋण की वसूली में सुधार लाने के प्रयासों को समर्थन देना पड़ेगा ताकि बैंक एवं बांड बाज़ार कम ऋण-स्प्रेड पर सहज महसूस कर सकें। केंद्र और राज्य सरकारों को राजकोषीय समेकन की प्रक्रिया से लगातार गुज़रना होगा ताकि वे उधार कम लेंगी और उसपर ब्याज कम अदा करेंगी। गृहस्थों को कम सांकेतिक दरों पर ही संतोष करना पड़ेगा, लेकिन उन्हें यह मानना पड़ेगा कि उच्च वास्तविक दरों से उनकी बचत अधिक उत्पादक बन जाती है। वे इसे फायदे का सौदा पाएंगे कि अधिक बचत करें ताकि देश की भारी निवेश आवश्यकता के लिए वित्त प्रदान कर सकें।

अल्पकाल में समायोजन करना मुश्किल और तकलीफदेह होता है। इसके बावजूद भी यदि हम ऐसी संस्थाओं का निर्माण करना चाहते हैं जो भविष्य में मुद्रास्फीति को कम बनाए रख सके तो उसके लिए हमें अपनी सोच को बदलना नहीं चाहिए, खासतौर से तब जब हमने आगे बढ़ने की ठान ली हो। सरकार ने भारतीय रिज़र्व बैंक के लिए सीपीआई आधारित मुद्रास्फीति संबंधी उद्देश्य रखने तथा स्वतंत्र मौद्रिक नीति समिति की स्थापना की संरचना करने, दोनों के लिए महत्वपूर्ण कदम उठाया है। आने वाले दिनों में नये गवर्नर और समिति के सदस्यों का चयन कर लिया जाएगा। मुझे उम्मीद है कि वे इस स्थापित संरचना एवं संस्था को आत्मसात कर लेंगे और भविष्य में भारत के लिए कम मुद्रास्फीति की स्थिति पैदा करेंगे।

इसके बहुत से नतीजे निकलेंगे। हमारी करेंसी अब स्थिर है क्योंकि निवेशकों में हमारे मौद्रिक लक्ष्य के प्रति भरोसा पैदा हो गया है, और यह स्थिरता तभी बेहतर होगी जब हम मुद्रास्फीति के बारे में अपना लक्ष्य प्राप्त कर लेंगे। विदेशी पूंजी का आना और भी भरोसेमंद होगा और उसकी परिपक्वता की अवधिकता भी बढ़ेगी, साथ ही रुपए में भी निवेश बढ़ेगा। इससे हमारे बैंकों तथा निगमों के लिए उपलब्ध पूंजी का पूल विस्तृत होगा। सरकार कम दर पर उधार ले सकेगी तथा अपने कर्ज की परिपक्वता को बढ़ा सकेगी। महंगाई की तेज मार गरीबों पर अलग-अलग तरीके से नहीं पड़ेगी और मध्यवर्ग के लोगों की बचत छिन नहीं जाएगी। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ेंगे ये सारी चीजें हमारी प्रतीक्षा में होंगी। मुझे धैर्यपूर्वक सुनने के लिए धन्यवाद।

संदर्भ

ब्रूनो माइकल एंड विलियम ईस्टर्ली, 1995, 'मुद्रास्फीति का संकट और दीर्घकालिक विकास' एनबीईआर वर्किंग पेपर सं. 5209(कैंब्रिज, मसाशूटः नेशनल ब्यूरो आफ इकानामिक रिसर्च)।

ईस्टर्ली विलियम एंड स्टैनली फिशर, 2001, 'मुद्रास्फीति और गरीब', जर्नल आफ मनी, क्रेडिट एंड बैंकिंग। संख्या 33, अंक 2, मई, 160-178

पिशर स्टैनली 1993, 'विकास में मैक्रो-आर्थिक कारकों की भूमिका', जर्नल आफ मानेटरी इकानामिकस्। संख्या 32, अंक 3, दिसंबर 1993, पृष्ठ 485-512

मोहसिन एस ख़ान, और अबदेलहक एस. सेनहदजी, 2000, 'मुद्रास्फीति और विकास के बीच संबंधों में सीमा निर्धारण का प्रभाव', आईएमएफ वर्किंग पेपर 00/110(वाशिंगटनः अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष)।